श्री गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान की समकालीन प्रासंगिकता

प्रो. रविंदर सिंह

धर्म रक्षा के लिए नौवें पातशाह श्री गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान भारतीय इतिहास में सर्वोच्च बलिदानों में से एक है। मध्ययुगीन भारत में जिन परिस्थितियों के कारण मानवाधिकारों का पतन हो रहा था, डर और खौफ का वातावरण था, किसी भी प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता का अभाव था और एक अत्याचारी शासन का बोलबाला था जिसने पूरे भारतीय समाज को एक रंग में बदल देने का प्रयत्न शुरू कर दिया था। ऐसे चुनौतीपूर्ण दौर में गुरु साहिब एक अद्वितीय शक्ति और उदाहरण बन कर सामने आए जिन्होंने भारत के बहुलतावादी समाज और संस्कृति की धार्मिक विविधता की रक्षा के लिए एक अहिंसक कदम उठाया और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

वर्तमान में कुछ संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों ने समृद्ध सिख विरासत और गुरुओं के बलिदान के इतिहास को संकुचित करने की साजिश रची है जिससे गुरु के सर्वांगीण, व्यापक और बहुआयामी मानव कल्याण प्रयासों को एक सीमित सीमा तक कम करके देखा जाने लगा है। इस तरह के संकीर्ण दृष्टिकोण का एक मुख्य कारण भारत की धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं के बारे में लोगों में जागरूकता की कमी और उसके ऊपर संदेह करना है। वर्तमान परिस्थितियों में इन मुद्दों पर विचार करना बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि धर्म के सही अर्थ की जानकारी के अभाव ने इससे जुड़ी अवधारणाओं में भ्रम पैदा कर दिया है। गुरुओं के समय और इतिहास को ठीक से समझने की जरूरत है क्योंकि गुरुओं के महान कार्यों के मूल्य को केवल उन परिस्थितियों और कारणों को समझने से ही समझा जा सकता है जिनके तहत गुरुओं ने अपने समय में इतने क्रांतिकारी और दीर्घकालिक निर्णय लिए।

मध्यकालीन युग पंजाब और पूरे उत्तरी भारत में उथल पुथल का समय रहा है। पंजाब अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सदियों से निरंतर उथल-पुथल और परिवर्तन के दौर से गुजरता रहा है। ये सभी संघर्ष इस भूखंड के समृद्ध प्राकृतिक और आर्थिक संसाधनों की लूट और कब्जे के लिए थे। एक समय में, पूरा उपमहाद्वीप अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता के लिए जाना जाता था, जिसमें अनेक रंगों, नस्लों, मतों-पंथों और भाषाओं की बहुलता थी। कई हजारों वर्ष पुरानी भारतीय सभ्यता में विविधता असामान्य नहीं है, इस सभ्यता की खासियत यह थी कि हर कोई इसमें समा जाता था। सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व जो इस भूमि की सभ्यता को जोड़ता है, वह है यहाँ से उपजी ज्ञान की अटूट परंपरा है. जिसने भारतीय दर्शन के माध्यम से जीव-जगत से सम्बंधित सवालों के जवाब खोजने की कोशिश की है। अपने और दुनिया के बारे में प्रश्न पूछने की प्रथा और इसके उत्तर खोजने के विभिन्न तरीकों और साधनों ने एक संचयी ज्ञान का प्रकाश किया है जिसे सदियों से वैज्ञानिक आधार पर रद्द नहीं किया जा सका है। इसके विपरीत, पश्चिम में दार्शनिक ज्ञान के कई सिद्धांत बिखर गए हैं। भारत की इस सभ्यता की बुनियादी पहचान इसका ब्रह्म केंद्रित ज्ञान प्रबंध है, जिसने ब्रह्म-केंद्रित जीव-जगत के निर्माण के एक प्रबंध की व्याख्या की है। अद्वैत दर्शन को सत् और ऋत की अवधारणाओं के माध्यम से प्रकट किया गया है। अद्वैत दर्शन के सिद्धांत के

माध्यम से, प्राणियों के व्यवहार और धर्म के साथ दुनिया के संचालन के आदर्श स्थापित किए गए हैं। धर्म कोई कर्मकांड की अवधारणा नहीं है बल्कि जीवन के आदर्श व्यवहार यानी आत्म-अनुशासन और मूल्यों की जिम्मेदारियों को निर्धारित करता है। यह धर्म, किसी भी अनुशासन की तरह, स्वयं के अनुभव से उत्पन्न होता है, बल या जबरदस्ती से नहीं। इसलिए भारतीय सभ्यता से प्राप्त धर्म राजनीतिक विचार नहीं बल्कि सभ्य जीवन जीने के आदर्श मूल्य हैं। इस प्रकार भारतीय सभ्यता से उत्पन्न हुए दार्शनिक ज्ञान पर आधारित धर्म के मूल्य भी बदलते रहे हैं लेकिन उनका मुख्य सरोकार बता केंद्रित जीव जगत के प्रबंधन से रहा है। कर्मकांड के स्तर पर धर्म के आदर्श मूल्यों और उसके मूल्यों की व्यावहारिकता में थोड़ा बदलाव आया है। 'ऋत्' की परिभाषा के अनुसार भी परिवर्तन निरंतर होता रहता है और बार-बार होता रहता है। जीव और जगत का कोई भी रूप स्थिर नहीं है, यह अस्थायी है इसलिए यह नष्ट हो जाता है और समय अपने पूर्व रूप में समा जाता है। इस पूरी सृष्टि के निर्माण का मूल तत्व और इसे बनाने वाली व्यवस्था एक निरंतरता में काम करती है और इस सारी व्यवस्था के पीछे काम करने वाला नियम, हुक्म या प्रबंध ही सत्य या सर्वोच्च सत्य है। इसी अद्‌वैत के इस सिद्‌धांत की परिपक्वता गुरबानी में भी मिलती है।

उपरोक्त संक्षिप्त चर्चा का अर्थ है कि वर्तमान में हम जिन घटनाओं और स्थितियों का विश्लेषण करने जा रहे हैं, उनके तत्कालीन संदर्भ का ज्ञान होना भी महत्त्वपूर्ण है। कोई भी घटना अपने काल के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकती वह किसी समय और स्थान में घटित होती है और उसके प्रभाव को आत्मसात भी करती है। इस दृष्टि से मध्य युग में गुरु तेगबहादुर जी के समय और स्थान से संबंधित परिस्थितियों की बात करना आवश्यक है। अतीत की घटनाओं की व्याख्या वर्तमान तक पहुँचते-पहुँचते कई तरह के प्रभाव ग्रहण करके अर्थ परिवर्तन कर लेती है।

मध्यकालीन युग भारतीय धार्मिक परंपराओं के लिए कठिन चुनौतियों भरा समय था। एक ओर, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं ने अपना अर्थ और तर्क खो दिया था, और धार्मिक जीवन में कर्मकांड ने आध्यात्मिक जीवन पर कब्जा कर लिया था। ऐसे समय में प्रचलित प्रथाओं के लिए कु-प्रथाएँ बनना एक स्वाभाविक घटना बन जाती है। सामाजिक व्यवहार समय के साथ बदलता है और यह परिवर्तन सहयोग और सहमति में परिणत होता है। भारत में यह मध्यकाल भी भक्ति आंदोलन के नेतृत्व में सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। यह जागृति आंदोलन दक्षिण में उत्पन्न हुआ और समय के साथ पूरे भारत में फैल गया। कबीर संप्रदायों में एक दोहरा प्रचलन में है-

भक्ति द्रविड़ उपजी लाये रामानन्द

प्रकट किया कबीर न. सात दीप नौ खंड-कबीर।

किसी भी समाज-संस्कृति में सुधार की प्रक्रिया उत्पन्न होना बहुत स्वाभाविक है। जब सम्बंधित समाज के भीतर से ही कुछ महान व्यक्ति अपने कुशल नेतृत्व द्‌वारा समाज में आयी गिरावट को सुधारने के लिए काम करते हैं तो इसका प्रभाव और मान्यता व्यापक होती है। भक्ति आंदोलन ने भारत के इस भाग में उत्पन्न हुई प्राचीन सभ्यता को पुनर्जीवित करने के लिए एक विशाल आंदोलन शुरू किया जो सैकड़ों वर्षों

से चल रहा है। इस आंदोलन ने समाज में धर्म के नाम पर फैली कुरीतियों को पहचाना और उन्हें मिटाने के लिए ज्ञान की चेतना पैदा की।

भक्ति आंदोलन भारतीय दर्शन के ज्ञान मार्ग को भक्ति मार्ग से जोड़ता है। भारतीय दर्शन में 'धर्म' का अर्थ स्व-अनुशासन है, अर्थात् धारियते इति 'धर्म', धर्म वह है जो धारण किया जाता है या धारण करने योग्य होता है। 'धर्म' एक कर्तव्य है, इसका अर्थ है. किसी कार्य की जिम्मेदारी का भाव। इसलिए धर्म शब्द का अर्थ बहुआयामी हो जाता है। लेकिन निश्चित रूप से, 'धर्म' का अर्थ केवल 'मजहब' या 'Religion' से नहीं लिया जा सकता है। यह भ्रम पैदा करता है। 'यतो ऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' यानी धर्म जीवन व्यवहार का एक अनुशासन है। भारतीय दर्शन में वर्णित चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में भी धर्म सबसे ऊँचा है और वह प्रथम है जिसके अनुसार अर्थ और काम के चरणों को पार करके ही मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। अर्थात् भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार धर्म का अर्थ किसी भी प्रकार से साम्प्रदायिक नहीं है। यह प्राकृतिक आचार-व्यवहार की एक सांस्कृतिक व्यवस्था है और मनुष्य के भीतर से उत्पन्न होती है, थोपी नहीं जाती। सही और गलत का विवेक भी धर्म का निर्धारण करता है। इस प्रकार धर्म मानव जीवन के हर क्षेत्र का एक मूलभूत तत्व है, जैसे पृथ्वी ने असंख्य लोगों का भार उठाया है. वैसे ही यह उसका धर्म है।

धौलु धरमु दइआ का पूत।

संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति।

जे को बुझ होवै सचिआरु।

धवलै उपरि केता भारु।

धरती होरु परै होरु होरु।

तिस ते भारु तलै कवणु जोरु।

सृष्टि का पालन-पोषण करने वाला एकमात्र निश्चित नियम 'धर्म' है जिसने शक्तिशाली बैल के समान सब को संभाल रखा है। यह धर्म दया का पुत्र है. अर्थात् अकाल पुरख ने अपनी कृपा से सृष्टि को बनाए रखने के लिए धर्म-रूप नियम बनाया है। इस धर्म ने अपनी मर्यादा के अनुसार 'संतोष' को जन्म दिया है। यदि मनुष्य इस विचार को समझ लेता है. तो वह अपने भीतर अकाल पुरख का प्रकाश धारण करने में सक्षम हो जाता है। बैल पर पृथ्वी का अनंत भार है, वह इतना भार कैसे हो सकता है? यदि पृथ्वी के नीचे एक बैल है, तो उस बैल को सहारा देने के लिए नीचे एक और पृथ्वी है. उस पृथ्वी का भार संभालने को एक और बैल, उसके नीचे पृथ्वी के नीचे एक और बैल, फिर दूसरा बैल, उसी तरह आखिरी का भार वहन करने के लिए बैल। उसके पास क्या टेक होगी? इसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन को व्यवस्थित तरीके से सही दिशा में ले जाने के लिए अनुशासन का निर्माण करता है. वह भी धर्म है।

जब भी धर्म के ऐसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत और मौलिक आधार को बहुत खतरा होता है, तो कोई न कोई महान व्यक्ति लोगों के कल्याण के लिए नेतृत्व करने के लिए आगे आता है। जैसा कि भगवत गीता में भी वर्णित है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।4-711

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। 4-8।।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि संसार में जब भी धर्म की हानि होती है. अधर्म बढ़ता है, तभी मैं (कृष्ण) अच्छे लोगों की रक्षा करने और दुष्टों का विनाश करने आता हूँ। धर्म की स्थापना के लिए मैं हर युग में पैदा हुआ हूँ।' शाब्दिक अर्थों में, यह अवतारवाद की तरह लग सकता है, लेकिन वास्तव में, यह विचार उन महात्माओं की चेतना की ओर इशारा करता है जो किसी भी युग में धर्म की रक्षा के लिए डट कर खड़े हो जाते हैं। ऐसे लोग जो अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठ सकते हैं और लोगों के कल्याण के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर सकते हैं। उसी सर्वोच्च बलिदान का संकल्प नौवें पातशाह गुरु तेगबहादुर साहिब में भी मौजूद था। धार्मिक स्वतंत्रता के विरुद्ध मिल रही चुनौतियों को स्वीकार करते हुए, जिस के बारे में गुरु नानक देव जी ने भी इंगित किया था, गुरु तेगबहादुर साहिब ने अपना बलिदान दे दिया। बाबर के हमले के समय गुरु नानक ने जो स्थिति देखी, वह उनके अपने शब्दों 'बाबरवाणी' में बहुत प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की गई थी-

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ।

आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ।

एती मार पई करलाणे हैं की दरदु न आइआ।।।। (गुरु ग्रंथ साहिब, 360)

गुरु नानक ने महसूस किया कि पश्चिम के ये हमले अब केवल लूटपाट या सत्ता हासिल करने तक ही सीमित नहीं थे बल्कि भारतीय जीवन शैली को बदलने के लिए भी थे। गुरु साहिब संवाद द्वारा परिवर्तन के विरोधी नहीं थे, लेकिन जिस रूप में बाबर जोर-जबर और आक्रामक रूप से सामाजिक सांस्कृतिक प्रथाओं पर हमला कर रहा था, गुरु नानक साहिब ने उसके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। भारत को विदेशी आक्रांताओं के इस सांस्कृतिक हमले की चेतावनी भी दी गई। यहाँ हिंदुस्तान से भाव, सिंधु घाटी के आसपास उत्पन्न हुई भारतीय सभ्यता से था, न कि किसी सांप्रदायिक पहचान वाले क्षेत्र से। गुरु साहिब उस समय भारतीय सभ्यता के इस विशाल क्षेत्र को संबोधित कर रहे थे जिसमें प्राचीन सभ्यता से उत्पन्न ज्ञान-केंद्रित धर्म और कर्म की व्यवहारिक एकता कार्यशील थी। यद्यपि उस समय कई पंथ, मत और संप्रदाय मौजूद थे लेकिन धर्म संबंधी चेतना लगभग समान थी। लेकिन बाबर के बाद उस के

उत्तराधिकारियों द्वारा स्थापित मुगल सरकार ने धर्म के पारंपरिक अर्थ को एक संस्थागत धर्म के रूप में देखने के विचार का प्रचार किया। इस्लाम के कट्टरपंथी रूप की वकालत करते हुए, उन्होंने जबरन धर्मांतरण शुरू किया और कुछ प्रचलित गलतफहमियों के आधार पर लोगों को आकर्षित करने का भी प्रयास किया। जिस रूप में मुगल जबरन इस्लाम थोप रहे थे, और साथ ही गैर-मुसलमानों और इस्लाम कबूल ना करने वालों को भी परेशान किया जाने लगा था, ऐसे में आम लोगों के मन में डर का माहौल पैदा हो गया था। हिंदुओं के विरुद्ध हिंसा चल रही थी और धर्मांतरण का प्रभाव दिखने लगा था-

गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।

धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ।

अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई ।

छोडीले पाखंडा नामि लइऐ जाहि तरंदा ।।1।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 471) ऐसी राजनीतिक स्थिति के कारण लोग मानसिक गुलामी के शिकार होने लगे। कोई भी राजा उनकी रक्षा करने में सक्षम नहीं था। जो उस समय के राजाओं के सैनिक थे, उन्होंने भी अपना क्षत्रिय धर्म छोड़ दिया और आक्रमणकारियों में शामिल हो गए-'खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही। स्रिसटि सभ इक वरन होई धरम की गति रही।।3।। (गुरु ग्रंथ साहिब, 663) इस प्रकार गुरु जी ने लोगों को धर्म के ऊपर आने वाले खतरे से अवगत कराने का भी प्रयास किया और अपनी बाणी के माध्यम से उस समय की वास्तविकता को भी प्रस्तुत किया। धार्मिक स्वतंत्रता पर जोर-जबर गुरुओं को बहुत असहज लग रहा था, इसलिए उस समय के भक्ति काल के दौरान, ऐसी चुनौतीपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए आवाज उठाई गई। गुरु अर्जन देव जी का समय भी बहुत चुनौतीपूर्ण था, उस समय जहांगीर मुगल बादशाह था और उसने भी इस्लाम के पक्ष में अन्य धर्मों और मान्यताओं का दमन जारी रखा। गुरु अर्जन उस समय पंजाब में मौजूद थे और गुरु नानक के पाँचवें ज्योत के रूप में सिख पंथ का नेतृत्व कर रहे थे। वह भी जहांगीर के आदेश पर शहीद हुए थे। गुरु साहिब की शहादत के लिए विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हुई हैं लेकिन सबसे सटीक जानकारी स्वयं जहाँगीर के शब्दों में दर्ज है। जहाँगीर स्वयं अपनी आत्मकथा "तुज़ुके जहाँगीरी" में लिखता है, कि, "गोइंदवाल, जो कि बियाह (व्यास)" नदी पर है, अर्जन देव नाम का एक हिंदू था, जो संत और पवित्रता के परिधानों में था. इतना कि उसने कई सरल हिंदुओं के दिलों पर कब्जा कर लिया था, यहाँ तक कि इस्लाम के अज्ञानी और मूर्ख अनुयायियों ने उसके तौर-तरीकों से आकर्षित कर लिया था, और उन्होंने उसकी पवित्रता का ढोल जोर से बजाया था। उन्होंने उसे गुरु कहा, और हर तरफ से मूर्ख लोग उसकी पूजा करने और उस पर पूर्ण विश्वास प्रकट करने के लिए उमड़ पड़े। कई बार मेरे मन में यह विचार आया कि मैं इस फालतू काम को बंद कर दूं या उसे इस्लाम के लोगों की सभा में ले आऊँ। अंत में जब राजकुमार खुसरो इस रास्ते से गुजरे तो इस तुच्छ व्यक्ति ने उनकी प्रतीक्षा करने का प्रस्ताव रखा। खुसरो वहीं रुके जहाँ वह थे, और उन्होंने बाहर आकर उन्हें प्रणाम किया। अर्जन देव ने खुसरो के साथ कुछ विशेष तरीके से व्यवहार किया, और उनके माथे पर

भगवा रंग में एक उंगली का निशान बनाया, जिसे भारतीय (हिंदुवान) कश्का, (तिलक) कहते हैं और इसे शुभ माना जाता है। जब यह बात मेरे कानों में पड़ी और मैं उसकी मूर्खता को स्पष्ट रूप से समझ गया, तो मैंने उन्हें उसे पेश करने का आदेश दिया और उसके घर, निवास स्थान और बच्चों को मुर्तजा खान को सौंप दिया, और उसकी संपत्ति को जब्त करने का आदेश दिया कि उसे मार डाला जाए।" तो इस तरह गुरु अर्जन साहिब गंभीर रूप से प्रताड़ित होने के बाद शहीद हो गए थे।

मुगलों ने इस्लाम के अलावा किसी अन्य धर्म या विश्वास में आस्था रखने वाले को काफिर घोषित किया, अन्य धर्मों के लोगों पर शुल्क लगाया, उन्हें इस्लाम में परिवर्तित करने के लिए प्रताड़ित किया और लालच का सहारा लिया। धर्म में प्रचलित कुप्रथाओं के साथ जबरन धर्मांतरण जैसी घटनाओं ने मानव जाति को अंधेरे में डुबो दिया था। 'माझ दी वार' में श्री गुरु नानक देव मुस्लिम शासकों के अत्याचार के बारे में कहते हैं:

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिया।

कूडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।

हउ भालि विकुंनी होई। आधेरै राहु न कोई.

विचि हउमै करि दुखु रोई.

कहु नानक किनि बिधि गति होई ।।1।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 145)

ऐसी राजनीतिक चेतना के साथ गुरुओं ने भारतीय सभ्यता के बुनियादी धार्मिक मूल्यों की रक्षा के लिए शास्त्रों के साथ-साथ शस्त्र भी रखने की आवश्यकता महसूस की। गुरु अर्जन की शहादत के बाद, गुरु हरगोबिंद ने मिरी-पीरी की दो कृपाण पहनकर शस्त्र और शास्त्र की आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास किया। राजनीतिक स्तर पर ऐसी कठिन परिस्थितियाँ बनी रहीं और गुरुओं के उपदेश में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया गया। लेकिन मुगल सत्ता के इस तरह के अजीबो-गरीब कदमों के बावजूद, ज्ञान गोष्ठी के माध्यम से विरोधी विचारधारा वाले लोगों का भी सम्मान करने की परंपरा इस मिट्टी का ही हिस्सा है, इसलिए गुरु तेगबहादुर जी ने अपनी विरासत की इस पहचान को बनाए रखने के लिए अपना सीस देने की पेशकश की।

गुरु तेगबहादुर के शासनकाल के दौरान, मुगलों ने पूरे उत्तर भारत में गैर-मुसलमानों, सभी हिंदुओं पर अत्याचार और उत्पीड़न जारी रखा। गुरु तेगबहादुर पूरी स्थिति को देख और समझ रहे थे।

जब कश्मीरी पंडितों के एक समूह ने अपनी फरियाद के साथ गुरु साहिब से संपर्क किया, तो वह क्षण भारत के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक बन गया। औरंगजेब की क्रूर नीतियों पर अहिंसक प्रतिक्रिया के रूप में गुरु साहिब अपना सीस देने को तैयार हो गए। गुरु साहिब का यह निर्णय

एक अद्‌वितीय उदाहरण है क्योंकि वे जानते थे कि मुगलों के विरुद्‌ध हथियार उठाने और उन्हें शस्त्र से समझाने का समय अभी नहीं आया था। मुगल शासक औरंगजेब गुरु साहिब के धैर्य का परीक्षण करना चाहता था जिसमें वह पराजित हुआ और गुरु तेगबहादुर साहिब ने 'धर्म' हेत साका जिनि किया। सीस दीया पर सिररू न दिया।' के अनुसार एक अद्‌वितीय उदाहरण स्थापित कर दिया। इसलिए गुरु साहिब के इस अनोखे बलिदान को पूरे भारत में याद किया जाता है। धर्म की रक्षा के लिए किए गए इस बलिदान के लिए आभार हेतु देशवासियों ने गुरु साहिब को 'हिंद की चादर, गुरु तेगबहादुर' से संबोधित किया। गुरु तेगबहादुर के बलिदान का आज भी कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।